International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(3): 64-66

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(3): 64-66
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 12-03-2017
Accepted: 13-04-2017

Pooja Saini
Department of Sanskrit, Hindu Girls College, Sonepat, Haryana, Indis

Correspondence
Pooja Saini
Department of Sanskrit, Hindu Girls College, Sonepat, Haryana, Indis

अष्टाध्यायी (प्रथमाध्याय) में वर्णित सामाजिक वर्णन

Pooja Saini

पाणिनि 500 ई पू. संस्कृत भाषा के सबसे बड़े वैयाकरणक हुए हैं। इनका जन्म तत्कालीन उत्तर पश्चिम भारत के गांधार में हुआ था। इनके व्याकरण का नाम अष्टाध्यायी है जिसमें आठ अध्याय और लगभग चार सहस्र सूत्र हैं। तत्कालीन समाज में लेखन सामग्री की दुष्प्राप्यता को ध्यान में रखकर पाणिनि ने व्याकरण को स्मृतिगम्य बनाने के लिए सूत्र शैली की सहायता ली। पुनः विवेचन को अतिशय संक्षिप्त बनाने हेतु पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणों से प्राप्त उपकरणों के साथ–साथ स्वयं भी अनेक उपकरणों का प्रयोग किया है जिसमे शिवसूत्र या माहेश्वर सूत्र सबसे महत्वपूर्ण हैं। महर्षि पाणिनि ने इन सूत्रों को देवाधिदेव शिव से प्राप्त किया था।

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारम्।
उद्धर्त्तुकामो सनकादिसिद्धादिनेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी के आठ अध्यायों को बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से विभक्त किया है। ये सूत्र वास्तव मे गणित के सूत्रों की भाँति हैं। जिस तरह से जटिल एवं विस्तृत गणितीय धारणाओं अथवा सिद्धान्तों को सूत्रों द्वारा सरलता से व्यक्त किया जाता है, उसी तरह पाणिनि ने सूत्रों द्वारा अत्यन्त संक्षेप मे ही व्याकरण के जटिल निमयों को स्पष्ट कर दिया। व्याकरणीय प्रक्रिया की दृष्टि से अष्टाध्यायी को मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. वाक्यों के पदों का संकलन (1–2 अध्याय) अष्टाध्यायी के प्रथम दो अध्यायों में पदो ंके सुबन्त, तिङन्त भेदों और वाक्यों में उनके परस्पर सम्बन्ध पर विचार किया गया है।
2. पदों का प्रकृति –प्रत्ययों में विभाग (3–5 अध्याय) तृतीय अध्याय में धातुओं से शब्द –सिद्धि का विवेचन तथा चतुर्थ और पंचम अध्याय में प्रातिपदिकों एवं शब्द सिद्धि का विचार है।
3. प्रकृति –प्रत्ययों के साथ आगम आदेश आदि का संयोजन कर परिनिष्ठित पदों का निर्माण (6–8 अध्याय) षष्ठ एवं सप्तम अध्यायों में सुबन्त एवं तिङन्त शब्दों की प्रकृति– प्रत्ययात्मक सिद्धि एवं स्वरो का विवेचन है, अष्टम अध्याय में सन्निहित पदो ंके शीघ्रोच्चारण से वर्णों या स्वरों पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा।

अष्टाध्यायी को सपादसप्ताध्यायी एवं त्रिपादी, दो भागों में विभक्त किया हैं–प्रथम अध्याय से लेकर आठवें अध्याय के प्रथम पाद तक को सपादसप्ताध्यायी एवं शेष तीन पादों को त्रिपादी कहा जाता है। प्रतिपाद्य विषयों की दृष्टि से विचार किया जाए तो संज्ञा और परिभाषा, स्वरों और व्यंजनों के प्रकार, धातुसिद्ध, क्रियापद, कारक, विभक्ति, एकशेष समास, कृदन्त, सुबन्त, तद्धित, आगम और आदेश, स्वर विचार, द्वित्व और सन्धि– ये अष्टाध्यायी के प्रतिपाद्य विषय हैं।
अष्टाध्यायी मात्र व्याकरण ग्रंथ नहीं है। इसमें प्रकारांतर से तत्कालीन भारतीय समाज का पूरा चित्र मिलता है। उस समय के भूगोल, सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा और राजनीतिक जीवन, दार्शनिक चिंतन, खान–पान, रहन–सहन आदि के प्रसंग स्थान–स्थान पर प्राप्त होते हैं। प्रथमोऽध्याय में वर्णित संख्या–वाचीशब्द, दिशा– वाचीशब्द, धर्म, नक्षत्र– वाचीशब्दों और स्थान–वाचीशब्दों का उल्लेख किया जा रहा है–

संख्या वाची– ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्[1] ईदूतौ च सप्तम्यर्थे[2]
आद्यन्तवदेकस्मिन्[3] ष्णान्ता षट्[4]
तृतीया–समासे[5] प्रथम–चरम–तयाल्पार्ध–कतिपयनेमाश्च[6]
षष्ठी स्थानेयोगा[7] न पदान्त–द्विवचन–वरे–यलोपे–स्वर–सवर्णानुस्वार–दीर्घ–जश्–चर्विधिषु[8]

द्विवचनेऽचि[9] एकश्रुति दूरात्संबुद्धौ[10]
अपृक्त एकाल्प्रत्ययः[11] प्रथमा–निर्दिष्टं समास उपसर्जनम्[12]
एक विभक्ति चापूर्वनिपाते[13] अस्मदो द्वयोश्च[14]
तिष्य–पुनर्वस्वोर्नक्षत्र–द्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम्[15] सरूपाणामेक–शेष एक–विभक्तौ[16]
नपुंसकमनपुंसकेनैकच्चास्यान्यतरस्याम्[17] त्यदादीनि सर्वैत्यिम्[18]
उद्विभ्यां तपः[19] समस्तृतीयायुक्तात्[20]
दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे[21] आकडारादेका संज्ञा[22]
षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा[23] बहुषु बहुवचनम्[24]
द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने[25] तृतीयार्थे[26]
तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथम–मध्यमोत्तमाः[27] तान्येकवचन–द्विवचन–बहुवचनान्येकशः[28]
प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च[29] शेषे प्रथमः[30]

दिशा वाची– विभाषा दिक् समासे बहु–ब्रीहौ[31] पूर्व–परावर–दक्षिणोत्तरापराधराणिव्यवस्थायामसंज्ञायाम्[32]
एङ् प्राचां देशे[33] अधेः प्रसहने[34]
पूर्ववत्सनः[35] प्रत्याङ्भ्यां श्रंवः पूर्वस्य कर्ता[36]
प्रागीश्वरान्निपाताः[37] ते प्राग्धातोः[38]

धर्मवाची– यज्ञकर्मण्यजप–न्यूङ्ख–समासु[39] न सुब्रह्मण्यायांस्वरितस्यतदूदात्तः[40]
देवब्रह्मणोरनुदात्तः[41]
उपान्मन्त्र–करणे[42] सुःपूजायाम्[43]

नक्षत्रवाची– फाल्गुनी–प्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे[44] छन्दास पुनर्वस्वोरेकवचनम्[45]
विशाखयोश्च[46] तिष्य–पुनर्वस्वोर्नक्षत्र–द्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम्[47]
नक्षत्रे च लुपि[48]

अंगवाची– मुख–नासिका–वचनोऽनुनासिकः[49] उच्चैरुदात्तः[50]
नीचैरनुदात्तः[51] समाहारः स्वरित्तः[52]
स्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम्[53] देवब्रह्मणोरनुदात्तः[54]
स्वरिततात्संहितायामनुदात्तानाम्[55] उदात्त–स्वरित–परस्य सन्नतर[56]:
वेः पाद–विहरणे[57] विभाषोपपदेन प्रतीयमान्[58]
कणे–मनसी श्रद्धाप्रतीघाते[59] नित्यं हस्ते पाणावुपयमने[60]

स्थानवाची– हलोऽनन्तराः संयोगः[61] अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः[62]
मिदचोऽन्त्यात्परः[63] स्थानेऽन्तरतमः[64]
अलोऽन्त्यस्य[65] अलोऽन्त्यादि टि[66]
अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा[67] आदिरन्त्येन सहेता[68]
येन विधिस्तदन्तस्य[69] जात्याख्यायामेकस्मिन्बहुवचनमन्यतरस्याम्[70]
इतरेतरान्योऽन्योपपदाच्च[71] उदोऽनूर्ध्व कर्मणि[72]
अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति[73] परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम्[74]
ह्वक्रोरन्यतरस्याम्[75] अन्तरपरिग्रहे[76]
पुरोऽव्ययम्[77] तिरोन्तर्धौ[78]

पाणिनि की पद्धति मङ्गलदात्री है। पाणिनि जी पूर्ण वास्तववादी थे और तत्कालीन लोक भाषा और शास्त्रीय भाषा दोनों का वर्णनात्मक व्याकरण उसने रचा। इस विषय से प्रतीत होता है कि वे पूर्ण यशस्वी और आदर्श वैयाकरणक थे। उनका पहला सूत्र वृद्धि रादैच् है, जिसके शुरु में वृद्धि शब्द बोला जाता हो, उसके द्वारा पढ़ने वाले छात्र की वृद्धि अवश्य ही होती है। वह शीघ्र ही आर्षबुद्धि ऋषियों के समान बुद्धि वाला होकर महान् विद्वान् बन जाता है और क्रम से सूत्र पढ़ने के कारण वह स्वयं वृत्ति (सूत्रार्थ) कर सकता है। स्वयं देखने वाली और जल्दी बोध करा देने वाली इस पाणिनि पद्धति को जल्दी अपनाओं, अध्ययन करों, मनन करां, और विद्वान् बनों।

संदर्भित ग्रन्थ

1. पाणिनि अष्टाध्यायी , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन 1/1/11
2. पा. अ. 1/1/19
3. पा. अ. 1/1/21
4. पा. अ. 1/1/2
5. पा. अ. 1/1/30
6. पा. अ. 1/1/33
7. पा. अ. 1/1/49
8. पा. अ. 1/1/58
9. पा. अ. 1/1/59
10. पा. अ. 1/2/33
11. पा. अ. 1/2/41
12. पा. अ. 1/2/43
13. पा. अ. 1/2/44
14. पा. अ. 1/2/51
15. पा. अ. 1/2/63
16. पा. अ. 1/2/64
17. पा. अ. 1/2/69
18. पा. अ 1/2/72
19. पा. अ. 1/3/27
20. पा. अ 1/3/54
21. पा. अ. 1/3/55

22. पा. अ. 1/4/1
23. पा. अ. 1/4/9
24. पा. अ. 1/4/21
25. पा. अ. 1/4/22
26. पा. अ. 1/4/85
27. पा. अ. 1/4/101
28. पा. अ. 1/4/102
29. पा. अ. 1/4/106
30. पा. अ. 1/4/108
31. पा. अ. 1/1/28
32. पा. अ. 1/1/34
33. पा. अ. 1/1/75
34. पा. अ. 1/3/33
35. पा. अ. 1/3/62
36. पा. अ. 1/4/40
37. पा. अ. 1/4/56
38. पा. अ. 1/4/80
39. पा. अ. 1/2/34
40. पा. अ. 1/2/37
41. पा. अ. 1/2/38
42. पा. अ. 1/3/25
43. पा. अ. 1/4/94
44. पा. अ. 1/2/60
45. पा. अ. 1/2/61
46. पा. अ. 1/2/63
47. पा. अ. 1/2/63
48. पा. अ. 1/3/45
49. पा. अ. 1/1/8
50. पा. अ. 1/2/29
51. पा. अ. 1/2/30
52. पा. अ. 1/2/31
53. पा. अ. 1/2/32
54. पा. अ. 1/2/38
55. पा. अ. 1/2/39
56. पा. अ. 1/2/40
57. पा. अ. 1/3/41
58. पा. अ. 1/3/77
59. पा. अ. 1/4/66
60. पा. अ. 1/4/77
61. पा. अ. 1/1/7
62. पा. अ. 1/1/36
63. पा. अ. 1/1/47
64. पा. अ. 1/1/50
65. पा. अ. 1/1/52
66. पा. अ. 1/1/64
67. पा. अ. 1/1/65
68. पा. अ. 1/1/71
69. पा. अ. 1/1/72
70. पा. अ. 1/2/58
71. पा. अ. 1/3/16
72. पा. अ. 1/3/24
73. पा. अ. 1/4/28
74. पा. अ. 1/4/44
75. पा. अ. 1/4/53
76. पा. अ. 1/4/65
77. पा. अ. 1/4/67
78. पा. अ. 1/4/71